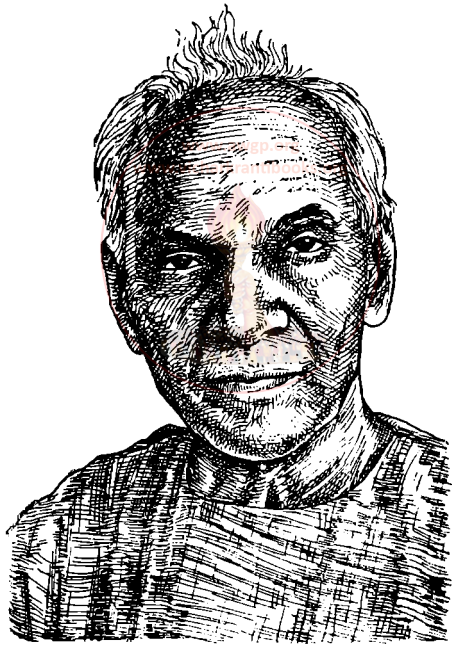


मनःस्थिति और परिस्थितियों

का

उत्कर्ष आवश्यक



श्रीराम शर्मा आचार्य

: BOOK MADE AVAILABLE FOR DIGITIZATION BY :

SHRI SANDIPBHAI PATEL,
MOHADEL, GUJARAT, INDIA

: OUR MAIN CENTERS :

Shantikunj, Haridwar,
Uttaranchal, India – 249411
Phone no : 91-1334- 260602,
Website : www.awgp.org
E-mail : shantikunj@awgp.org

Gayatri Tapobhumi,
Mathura, U.P., India – 281003
Phone no : 91-0565-2530128,
Website : www.awgp.org
E-mail : yugnirman@awgp.org

: BOOK DIGITIZED BY :

Vicharkranti Pustakalay, Thana-Faliya, Dindoligam, Surat-394210, Gujarat, India
E-mail: vicharkranti.awgp@gmail.com | Website : www.vicharkrantibooks.org

मनःस्थिति और परिस्थितियों का



उत्कर्ष आवश्यक



अपने संबन्ध में जैसी भी भली-बुरी मान्यताएँ परिपक्व हो जाती हैं, मनुष्य क्रमशः उसी ढाँचे में ढलता जाता है और उसी स्तर का बन जाता है। भेड़ों के झुण्ड में पले हुए सिंह शावक का रहन-सहन उसी समुदाय के ढाँचे में ढल गया था। पीछे किसी सिंह से भेंट होने पर उसकी इस दयनीय स्थिति को देख और पानी में छाया दिखाकर सिंह बिरादरी में होने का विश्वास दिलाया, तो उसने पिछला ढर्रा बदल दिया। भेड़ों का साथ छोड़कर सिंहों के समुदाय में चला गया। इस पुरानी कहानी से आत्मबोध की परिणति का परिचय मिलता है।

स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता किन्हीं विरलों में ही होती है। वस्तुस्थिति जानने के लिए किसी-किसी में ही जिज्ञासा होती है। अन्यथा लोग जैसे समुदाय में रहते हैं, उन्हीं की गतिविधियों को देखते हुये तदनुरूप अनुकरण करने लगते हैं। अनुकरण करने की मानवी प्रवृत्ति प्रख्यात है।

टिड्डे बरसात के दिनों हरी घास पर बैठते हैं, उन दिनों उनकी काया हरे रंग की होती है। पर जब गर्मी के दिनों में घास सूखकर पीली पड़ जाती है, तो उसके बीच जहाँ-तहाँ रहने वाले टिड्डे भी पीले रंग के हो जाते हैं। यह निरन्तर चिन्तन की परिणति है।

भृङ्ग और झींगुर के बारे में भी ऐसा ही कुछ कहा जाता है। भृङ्ग गूँजती रहती है, झींगुर उस गुंजन को तन्मयता पूर्वक सुनता रहता है और छवि निहारता रहता है। कुछ ही समय में झींगुर का शरीर भृङ्ग जैसा हो जाता है।

यह तथ्य बताते हैं कि सान्निध्य और वातावरण प्राणी को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। इस दबाव में उसकी जन्मजात प्रकृति तक बदल जाती है। राजस्थान



के एक शिकारी राजा ने सिहों के दो नवजात शिशु पकड़े और उन्हें अपने छोटे चिड़िया—घर में दो पिंजड़ों में बन्द कर दिया। उन्हें खाने को नियत समय पर मांस दिया जाता था, पर यह उनसे कभी देखा न था कि यह मांस है और उसे स्वयं प्राप्त करने के लिए क्या करना पड़ता है। उन्हें कभी शिकार करने का अवसर नहीं मिला।

एक प्रसंग में राजा ने अपने आगन्तुओं को आश्चर्यजनक दृश्य दिखाया। एक सिह के पिंजड़े में मोटा बकरा धकेल दिया। सिह डर गया और उसने एक कोने में सिमट कर मुँह छिपा लिया। दूसरे पिंजड़े में एक मोटा सुअर धकेला गया था। सुअर इससे पहले उसने कभी देखा न था, वह डर गया और इस विपत्ति से बचने के लिए वह भी जान बचाने के लिए सिर नीचा करके कोने में बैठ गया। दोनों सिह का यह हाल देखकर दर्शकों ने यह अनुमान लगाया कि किसी में जन्म-जात सामर्थ्य कितनी ही हो, किसी भी स्तर की क्यों न हो, पर यदि वह कार्यान्वित न हो, तो फिर वह एक प्रकार से तिरोहित ही हो जाती है।

उ. प्र. के आगरा जिले में खदौली गाँव के पास बीहड़ों में भेड़िये एक मनुष्य का बच्चा उठा ले गये। मादा भेड़िया ने उसे अपना बच्चा समझा और दूध पिलाकर पाल लिया। लड़का चार वर्ष की आयु का होने तक भेड़ियों की तरह चलता, बोलता और खाना-सोना सीख गया। शिकारियों ने एक दिन उन भेड़ियों को मार दिया और मनुष्य के बच्चे को उठा लाये। उसे मनुष्य का रहन-सहन सिखाने की बहुत कोशिश की गई, पर तनिक भी सफलता न मिली, फिर उसे लखनऊ मेडिकल कालेज में जाँच-पड़ताल के लिए भेजा गया। उसका स्वभाव बदलने के लिए आठ वर्ष तक प्रयोग चलते रहे, पर उसमें नाम मात्र का ही सुधार हो सका। बारह वर्ष की आयु होते-होते वह मर गया, पर मनुष्य स्तर की प्रवृत्तियाँ सिखाने में कोई सफलता न मिली।

यह उदाहरण बताते हैं कि मनुष्य पर—प्राणियों पर—वातावरण का और उसके अनुकरण का भी प्रभाव पड़ता है और वह अपनी जन्म जात विशेषताओं को भूल जाता है।



एक घोंसले से एक ही समय जन्मे दो सुग्गे के बच्चे पकड़े गये। उन्हें पालने के लिए दो व्यक्तियों को दिया गया। एक पंडित को—एक कसाई को। दोनों ने अपने अपने मतलब के शब्द उन्हें सिखाये। पंडित का सुग्गा 'राधेश्याम—मीताराम' और कसाई का 'जिवहू करो—मांस निकालो', किसी भी जानवर को देखकर कहने लगता। इस भिन्नता का कारण प्रतीत हुआ कि जो उन्हें पालने वालों ने सिखाया था, वह उनसे सीख लिया।

प्राणियों की मौलिक प्रकृति होती है और वंश परम्परा की कई विशेषताएँ भी साथ रहती हैं पर उन्हें उभारने का अवसर सामान्य परिस्थितियों में ही मिलता है। विपरीत वातावरण का दबाव पड़ने पर वे अपनी मौलिक प्रकृति को भूल जाते हैं और जो देखते रहा गया है—सिखाने का दबाव पड़ता रहा है—वह अभ्यास प्रमुख हो जाता है।

मदारी के रीछ—बन्दर एवम् मरकसों के प्रशिक्षित जानवर ऐसे खेल एवं कृत्य करते हैं, जो उनकी मौलिक प्रकृति से मेल नहीं खाते। सिंह, हाथी, घोड़े, कुत्ते जानवरों को मरकम वाले, वे करना दिखाना सिखा लेते हैं, जो सामान्यतया उनमें से क्रिमी को भी करते नहीं देखा गया। यह प्रशिक्षण का, वातावरण का, परिणाम है। उसे अपवाद नहीं समझा जाना चाहिए, वरन् यह समझा जाना चाहिये कि प्रकृति और परिस्थितियों की तुलना में परिस्थितियों का प्रभाव कहीं अधिक होता है। मनुष्य को बदलने में वातावरण असाधारण रूप में सहायक होता है।

सामान्यतः मध्यम तापमान में मनुष्य को रहना उपयुक्त एवम् सुविधाजनक लगता है, किन्तु शून्य से कम तापमान में उत्तरी ध्रुवों के निवासी ऐकिमो शताब्दियों से वहाँ रहते आ रहे हैं। इसी प्रकार अत्यधिक उष्ण कटिबंध के क्षेत्रों में भी बस्तियाँ पाई गई हैं और लोग वहाँ भी जीवन यात्रा को प्रसन्नतापूर्वक चलाते रहते हैं। आँधियों वाले रेगिस्तान भी उस असुविधा जनक क्षेत्र से मनुष्यों को भगा देने में सफल नहीं हो पाते।

वनवासी जन-जातियों में अलग-अलग झोपड़े बनाकर रहने की आदत देखी जाती है। उन क्षेत्रों में भेड़िये, चीते, साँप आदि भी रहते हैं, साथ ही उनके कार्य



क्षेत्र में जीवनोपयोगी सुविधाएँ भी कम ही रहती हैं। फिर भी वे पीढ़ियों से वहीं रहते हैं और छोड़कर अन्यत्र सुविधा के स्थान पर चलने के लिए समझाने पर भी सहमत नहीं होते। चितौड़ क्षेत्र के मूल निवासी गगड़िया लुहार एक जगह बसने को तैयार नहीं होते। यायावरों की तरह भ्रमण ही करते रहते हैं। एक गाड़ी में ही अपने पूरे परिवार का निर्वाह कर लेते हैं। सर्दी—गर्मी—वर्षा सभी ऋतुएँ उसी वातावरण में निकालते रहते हैं। इस प्रचलन को अपनाये उन्हें सैकड़ों वर्ष हो गये, पर दूसरों को सुविधाजनक जीते हुए देखकर भी उनकी यह इच्छा नहीं होती कि अपना ढर्रा बदलें और नये स्तर की—नई सुविधाओं वाली जीवनचर्या का आरंभ करें। यह सब आदतों और अभ्यासों पर निर्भर है। जो परिस्थितियों के कारण ढली हुई मनःस्थिति पर निर्भर है। यह ठीक है कि मनःस्थिति से परिस्थितियाँ बनती हैं, किन्तु उतना ही सच यह भी है कि परिस्थितियों का दबाव मनुष्य की मनःस्थिति को भी ऐसे ढाँचे में ढाल देता है, जिस को आश्चर्यजनक एवम् अद्भुत कहा जा सके।

मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता का समावेश करने के लिए यह आवश्यक है कि उसे उत्तम स्तर की परिस्थितियों में रहने और प्रेरणाप्रद वातावरण में रहने का अवसर दिया जाय। अन्यथा पुस्तकोप्य ज्ञान वाली शिक्षा मनुष्य के चरित्र को उत्कृष्ट ढाँचे में ढाल सकेगी। पुस्तकों में व्यक्तित्व निर्माण की—नागरिकता और सामाजिकता की शिक्षा का उल्लेख हो सकता है। विद्यार्थी उसे रट भी सकते हैं, किन्तु उसे वे जीवनचर्या में भी उतार लें—यह आवश्यक नहीं।

खेत को जोतने और बोने की प्रक्रिया आवश्यक है, किन्तु खाद-पानी के बिना बात पूरी नहीं होती। फसल काटने और मूसम्यन्न बनने का अवसर नहीं आता। मनुष्य का चिन्तन सज्जनोचित होना चाहिए, उसमें आदर्शवादिता के तत्वों का समावेश होना चाहिए। यह मानसिक शिक्षण, स्वाध्याय, सत्संग के माध्यम से पठन और परामर्श द्वारा पूरा होना है। यह आवश्यक चिन्तन को सही दिशा देने के लिए है, फिर भी यह नहीं मान बैठना चाहिए कि व्यक्तित्व के परिष्कार में इतना भर कर लेने से काम चल जायेगा। साथ ही यह भी आवश्यक है कि विचारों के



अनुरूप वातावरण में रहने और निर्धारणों को चरित्र एवम् व्यवहार में उतारने का अवसर मिले। व्यक्ति वैसे ही वातावरण में भी रहे। सम्पर्क क्षेत्र के लोगों को वैसे ही आचरण करते देखे, ताकि वैसे ही अनुकरण करने की प्रेरणा भी मिले।

पुरातन काल में गुरुकुलों की शिक्षण पद्धति यह थी कि बच्चों को ऋषि-आश्रमों में निवास करने के लिए भेज दिया जाता था, वहीं वे पढ़ते भी थे और साथियों का—अध्यापकों का—आचरण—प्रवाह देखते हुए, उसी ढाँचे में ढलते भी थे। प्रकृति के सान्निध्य में वन्य क्षेत्र में बने हुए गुरुकुलों में सुविधाएँ कम थीं। फिर भी निर्धन और सम्पन्न लोग साथ-साथ रहकर एक विशिष्ट जीवन पद्धति में रहने की सुविधा प्राप्त करते थे। नगरों के साधारण जनों में सभी स्तर के लोग होते थे, उनके सम्पर्क—प्रभाव से वे छात्र सहज ही बच जाते थे। कुविचारों और कुकर्मों को अपनाने वाले लोग घिच-पिच ग्राम-नगरों में प्रायः अधिक संख्या में रहते हैं, उनकी उत्तेजक गतिविधियाँ कच्ची आयु के लोगों को अधिक प्रभावित करती हैं। उनसे बचाव रखा जाना आवश्यक समझा जाता था, इसलिए पाठ्य-विधि की अपेक्षा जीवनचर्याको अधिक महत्व दिया जाता था। यही कारण था कि बड़े नगरों में विद्यालय बनाने की अपेक्षा, वे ऐसे स्थानों में बनाये जाते थे, जहाँ विद्यार्थी वांछनीय वातावरण और उपयुक्त परिस्थितियों में बने रहें। आश्रम की निर्धारित पद्धति के ढाँचे में ढलते रहें। अध्यापन के विषयों की तुलना में छात्रावास की निवाम-निर्वाह शैली को अधिक महत्व दिया जाता था। यही कारण था कि जब छात्र कच्ची आयु, किशोरावस्था गुरुकुलों में व्यतीत करने के उपरान्त यौवन की परिपक्वता में प्रवेश करते हुए घर वापिस लौटते थे, तब न केवल वे जीवनोपयोगी सभी प्रसंगा का अध्ययन कर चुके होते थे, वरन् व्यक्तित्व की दृष्टि से भी वे इस स्तर के होते थे कि दूसरों का अनुपयुक्त प्रभाव ग्रहण करने के खतरे से दूर रहते हुए, अपनी विशिष्टता की छाप सम्पर्क में आने वालों पर छोड़ सकें।

इन दिनों सुविकसित व्यक्तित्वों की अतीव आवश्यकता है, ताकि वे प्रचलित अवांछनीय प्रवाह में बहने की अपेक्षा अपनी विशिष्टता की दिशा में दूसरों को घसीट ले चलने में सफल हो सकें। प्रश्न बच्चों की तरह बड़ों का भी है। विद्या-



थियों को ऐसे छात्रावासों का प्रबन्ध होना चाहिए, जिनमें न केवल भोजन-निवास की उपयुक्त व्यवस्था हो, वरन् मनोदशा और शेष समय को उपयुक्त अभ्यास में लगा सकने वाले संरक्षक-संचालक भी अपने कर्तव्य उत्तरदायित्व का पूरा-पूरा ध्यान रखें। अध्यापक क्या पढ़ाते हैं, इसकी अपेक्षा यह अधिक महत्वपूर्ण है कि छात्रावास में उन्हें किस ढाँचे में ढाला जाता है।

सामान्य जीवन में मुहल्लों की सजावट ऐसी होनी चाहिए, जो कामकाजी लोगों को पास पड़ोस की गतिविधियों से उपयुक्त प्रेरणाएँ प्राप्त करने का लाभ दे सके। जिन मुहल्लों में अवांछनीय गतिविधियाँ चलती रहती हैं, दुष्प्रवृत्तियों का दौर रहता है, कुकर्म होते रहते हैं, उनके समाचार भी कम भयावह नहीं होते। उसके सीधे सम्पर्क में न आने पर भी इस-उसके मुँह से सुनी जाने वाली चर्चा भी मस्तिष्कों में उथल-पुथल उत्पन्न करने की दृष्टि से कम विषाक्त नहीं होती। सुने गये विवरण यदि अनैतिक स्तर के हैं, तो वे अपनी कार्य शैली के लिए आरम्भ में घृणा और बाद में सहमति की मनःस्थिति बना लेते हैं। यही कारण है कि ओछे स्तर के लोगों से भरे हुए लोगों के चरित्र से उठने वाली दुर्गन्ध अच्छे लोगों को भी प्रभावित करती है। विशेषतया कच्ची आयु के किशोरावस्था वाले उन अवांछनीयताओं को जल्दी एवम् अधिक मात्रा में ग्रहण करते हैं। बँसी घटनाएँ आँखों के सामने से गुजरती हैं, तो प्रभाव और भी अधिक छोड़ती हैं।

इस दिशा में सिनेमा अपनी विलक्षण भूमिका निभाता है। अपने देश के सिनेमाओं की पटकथा एक ही होती है कि युवक-युवती स्वेच्छाचार बरतते, समाज की मर्यादाओं को ताक में रखते, यौनाचार की दिशा में लम्बे डग बढ़ाते हैं। इन्हें बार-बार देखते रहने वालों के मन में उसी प्रकार की उथल-पुथल मचती है और अवसर पाते ही वे ऐसे कदम उठा लेते हैं, जिनसे सुखी विवाह का लाभ तो मिलता नहीं, उलटे फजीहत कराने वाले जंजाल म फँस जात हैं। मनोरंजन प्रयोजन के निमित्त देखे गये सिनेमा अपनी एक नई संस्कृति बनाते हैं, फलतः ऐसे मानविक उद्देश्यों का जन्म होता है, जो सर्वसाधारण के संमुख अनुपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करें।



कम किराये की दृष्टि से झुग्गी-झोपड़ियों में रहने लगने पर, न केवल गंदगीजन्य छूत की बीमारियों के लगने का भय रहता है, वरन् उस क्षेत्र पर छाये हुए अनाचारों की छूत भी अपने या अपने बच्चों के सिर पर आ लदती है। इस खतरे से बचाव होने का आरम्भ से ही ध्यान रखना चाहिए, ताकि पीछे पश्चात्ताप न करना पड़े।

जिन देशों ने प्रगति की है, उनसे न केवल स्कूली पाठ्यक्रमों में व्यक्तित्व को विकसित करने वाले तथ्यों का समावेश किया है, वरन् वातावरण बनाने पर पैनी दृष्टि रखी है। सांस्कृतिक कार्यक्रमों को भी एक प्रकार से घटनाक्रम ही समझा जाता है, इसलिए मनोरंजन क्षेत्र पर भी उतनी ही कड़ी नजर रखा जाती है, जितना कि अन्य उत्तमना उत्पन्न करने वाले आन्दोलनों पर।

पानी का बहाव नीचे की ओर होता है, गिरने वाली परिस्थितियों का बाहुल्य होने पर जन—मानस में हेय—स्तर की उत्कंठाएँ उठने लगती हैं, जबकि आदर्शवादी प्रेरणाएँ धीमा प्रभाव डालती हैं। पानी को नीचे से ऊँचा उठाने में अपेक्षाकृत कठिन प्रयास करना पड़ता है। समाज को ऊँचा उठाने के लिए जहाँ सत्साहित्य की आवश्यकता है, सत्परामर्शों की व्यवस्था बनाने वाले संगठनों की आवश्यकता है, वहाँ सांस्कृतिक कार्यक्रमों की दिशाधारा पर भी अभीष्ट नियन्त्रण रखा जाना चाहिए। गांवों या मुहल्लों की भवन संरचना बदली न जा सके, तो भी वहाँ ऐसी समितियों की स्थापना होनी चाहिए, जो उस क्षेत्र का वातावरण सज्जनोचित बनाये रहें और जो दुष्प्रवृत्तियाँ चल पड़ी हों, उन्हें उखाड़ने का प्रयत्न करें।

स्वच्छता, शिक्षा, चिकित्सा, आजीविका आदि सत्प्रवृत्तियों की व्यवस्था की ओर विज्ञानों का जितना ध्यान जाना चाहिये, उससे भी अधिक इसका प्रयास होता रहे कि जन साधारण की मनःस्थिति और परिस्थिति आदर्शों के विपरीत न चलने पाये। उत्कृष्ट के लिए इस ओर उपेक्षा न बरती जानी चाहिए, वरन् अधिकाधिक तत्परता प्रदर्शित की जानी चाहिए।

कमाडू—२४६। युगान्तर चेतना प्रेस, शान्ति कुञ्ज हरिद्वार। मूल्य-४० पंमा